सतत एवं समग्र मूल्यांकन

रोहित धनकर

आकलन के बारे में जब बात करते हैं, तो उसमें बहुत-सी चीजें शामिल होती हैं। सर्वप्रथम, हम देखें कि आकलन के उद्देश्य क्या-क्या हो सकते हैं? मोटे तौर पर इसके दो प्रकार के उद्देश्य हो सकते हैः पहले को हम शिक्षणशास्त्रीय उद्देश्य कह सकते हैं। इसके भी दो प्रकार हो सकते हैंः

1. सीखने में मदद करना। यानी, किसी बच्चे का आकलन हम इसलिए करते हैं ताकि उसकी बेहतर सीखने में मदद कर सकें।
2. पूरी कक्षा के शिक्षण की बेहतर व्यवस्था।

उपरोक्त उद्देश्यों में दूसरा उद्देश्य संभावित है और दोनों ही एक-दूसरे को परस्पर समाहित (ओवरलैप) करते हैं। यहां मैं कहना चाहता हूं कि एक बच्चे का आकलन मैं इसलिए करता हूं ताकि बेहतर सीखने में उसकी मदद कर सकूं, दूसरी स्थिति में जब मैं अपनी पूरी कक्षा को देखता हूं कि 25 या 30 फीसदी बच्चे नहीं सीख पा रहे हैं, तो मैं अपनी शिक्षण प्रणाली और कक्षा में अपने तरीकों को बदल देता हूं। उसे सभी बच्चों के लिए उपयुक्त बनाने की कोशिश करता हूं। यहां ध्यान किसी एक बच्चे पर न होकर पूरे समूह पर होता है, जिसे मैं पढ़ा रहा हूं। दोनों में यही थोड़ा फर्क है और अंतर-व्याप्ति भी है।

आकलन का मकसद सिर्फ यही नहीं होता। इसके और भी उद्देश्य होते हैं। उन्हें हम नकार नहीं सकते। आकलन के दूसरे उद्देश्यों को हम प्रबंधन या प्रशासन संबंधी उद्देश्य कह सकते हैं।

प्रबंधन का एक हिस्सा है प्रमाण पत्र देना (सर्टिफिकेशन) जो सिखाने संबंधी उद्देश्यों से जुड़ा हुआ है, क्योंकि आखिर प्रमाण पत्र सीखने का ही तो दे रहे हैं। शिक्षा के अधिकार कानून के अनुसार पांचवीं के बाद प्रमाण पत्र देना जरूरी नहीं है लेकिन आठवीं का प्रमाण पत्र देना अब भी जरूरी है। किसी भी स्कूल या शिक्षण

संस्था के लिए यह प्रमाणित करना जरूरी है कि अमुक बच्चे ने हमारे यहां से अमुक पाठ्यक्रम या शिक्षण-कार्यक्रम में हिस्सा लिया और इसमें जरूरी पढ़ाई पूरी की। आकलन का यह प्रयोजन हमेशा से रहा है। प्रत्येक स्कूल से यह उम्मीद की जाती थी कि वह आठवीं, दसवीं या बारहवीं की शिक्षा पूरी करने का एक प्रमाण पत्र जारी करे। यह बच्चे के सीखने के आधार पर दिया जाता है इसलिए शिक्षण की गुणवत्ता के लिहाज से महत्त्वपूर्ण है।

इसके अलावा तीसरी चीज है अभिभावकों से संवाद। पिछले लगभग 20-25 सालों से यह बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है कि स्कूल अभिभावकों को बताएं कि उनके बच्चे कितना और कैसा सीख रहे हैं? अच्छे स्कूल यह बात मानते भी हैं। इसके बहुतेरे विकृत रूप भी हैं। उदाहरण के लिए, निजी स्कूलों में होने वाली शिक्षक-अभिभावक बैठक। ऐसी बैठकों का अनुभव यह है कि उसमें विद्यार्थी की शिक्षा के बारे में समग्रता से बात नहीं होती, बल्कि आपको आगाह किया जाता है कि किस विषय का ट्यूशन लगवाना है, किससे लगवाना है, आदि-इत्यादि। अभिभावकों को डराया भी जाता है। खैर, यह उसका विकृत रूप है।

> *“मुझे लगता है कि सतत व समग्र आकलन ‘क्या सीखा जाना चाहिए’ पर ध्यान देता है, न कि किसने किससे ज्यादा सीखा। सतत एवं समग्र आकलन में अमूमन यह देखा जाता है कि पाठ्यचर्या के बरक्स बच्चा कहां पहुंचा है तथा अभी और कितना काम करना है। आप जब भी शिक्षणशास्त्रीय या सीखने की बेहतर व्यवस्था के संदर्भ में या अभिभावकों से संवाद करने या प्रमाण पत्र देने के लिए आकलन करते हैं तब देखने की कोशिश की जाती है कि पाठ्यचर्या के बरक्स बच्चे ने कितना सीखा है।”*

हालांकि, अभिभावकों को ऐसी बैठकों से दूसरी तरह की मदद भी मिल सकती है। ट्यूशन की नहीं, बल्कि बच्चे की शिक्षा के संबंध में, घर पर मदद के बारे में। जैसे, हम दिगन्तर स्कूल में बात करते थे। मान लीजिए, कोई बच्चा लगातार देर से आ रहा है और इस वजह से उसकी पढ़ाई प्रभावित हो रही है। पूछने पर पता चलता था कि स्कूल आने से पहले उसे किसी को खाना देने जाना होता है या मदरसे जाना होता है और इस वजह से वह देर से आ रहा है। हम इसके बारे में अभिभावकों से मदद मांगते थे। हम कहते थे कि आप अगर खाना जल्दी बना दें तो यह थोड़ा जल्दी आ सकता है या मदरसे की शाम वाली पारी में भेज दें। अभिभावकों के साथ बैठक का एक मकसद यह भी हो सकता है।

इसके अलावा चौथा उद्देश्य विद्यालयों के शैक्षणिक स्वास्थ्य का हो सकता है। मोटे तौर पर इसका मतलब है कि यदि किसी स्कूल में 100 बच्चे हैं और उसमें पांच तो बहुत बढ़िया सीख रहे हैं, लेकिन 95 बहुत खराब सीख रहे हैं। इससे जाहिर होता है कि स्कूल का स्वास्थ्य बहुत खराब है। अतः, स्कूल का स्वास्थ्य ठीक करने के लिए भी हमें आकलन की जरूरत पड़ती है, क्योंकि स्कूल का अंतिम लक्ष्य तो बच्चों को सिखाना ही है।

इसी तरह पांचवां उद्देश्य व्यवस्था के स्वास्थ्य का हो सकता है। जब राष्ट्रीय स्तर पर पीसा (प्रोग्राम फॉर इंटरनेशनल स्टूडेंट असेसमेंट) जैसे आकलन किए जाते हैं तो वे पूरी शिक्षा व्यवस्था के स्वास्थ्य की जांच करते हैं। हालांकि आजकल उनका ज्यादा बड़ा उद्देश्य तुलना करना हो गया है, फिर भी वे व्यवस्थागत स्वास्थ्य को तो जांचते ही हैं।

सतत और समग्र आकलन पर आने से पहले यह समझना जरूरी है कि शिक्षणशास्त्रीय दृष्टि से आकलन बच्चों के सीखने को बेहतर बनाने के लिए काफी मददगार हो सकता है। इसके अलावा प्रबंधन वाले उद्देश्य की प्रमाण पत्र और अभिभावकों से संवाद के रूप में मदद ले सकते हैं, लेकिन मुझे नहीं लगता कि स्कूल और व्यवस्था के स्वास्थ्य में इससे बहुत अधिक मदद मिल सकती है।

आजकल आकलन के संदर्भ में खास तरह की शब्दावली का चलन है। इसे समझना जरूरी है। यह हैः रचनात्मक (फॉर्मेटिव) आकलन और योगात्मक (समेटिव) आकलन। रचनात्मक आकलन का मतलब है कि जो शिक्षण के साथ-साथ चल रहा है और सीखने में बच्चे की मदद कर रहा है। यानी, हम बच्चे की पढ़ाई या प्रगति साथ-साथ देखते हैं। योगात्मक का अर्थ होता है एक निश्चित अवधि के बाद किया जाने वाला आकलन, कि अब बच्चे यहां पहुंच चुके हैं। सतत एवं समग्र आकलन रचनात्मक प्रकृति का है। वह योगात्मक आकलन में कुछ काम तो आ सकता है,

> *"अवधारणात्मक स्तर पर जब हम सतत आकलन की बात करते हैं, तो यह माना जाता है कि उसमे कोई अवधि नहीं होगी। दूसरे, ऐसी कोई बाध्यता नहीं होगी कि सारे बच्चों का आकलन एक साथ ही हो। कुछ बच्चों का आज हो सकता है, कुछ का कल हो सकता है, कुछ का परसों हो सकता है और इसमें निश्चित अवधि नहीं है, इसलिए जिनका आकलन आज हुआ है, उनका फिर से परसों भी हो सकता है।"*

लेकिन उसकी प्रकृति वह नहीं है। योगात्मक आकलन की प्रकृति है कि इसमें बीच में कुछ नहीं होता यानी आपकी जो भी समयावधि है, छह महीने या साल भर की उसके बाद आप आकलन करते हैं। जबकि रचनात्मक आकलन रोज-रोज चलने वाली प्रक्रिया है।

आकलन के बारे में एक और पुराना झगड़ा है, जिस पर तीन नजरिए (पोजीशन) हो सकते हैं। इस पर किस तरह का रुख लेना है, यह स्कूल के दर्शन पर निर्भर करता है।

बहुतेरे आकलन तुलनात्मक होते हैं। इसका अर्थ है कि आप पाठ्यचर्या के बरक्स नहीं देखते कि कौनसा बच्चा कितना जानता है। आप यह देखते हैं कि कौनसा बच्चा सबसे ज्यादा जानता है और कौनसा बच्चा सबसे कम जानता है। यानी, आप बच्चों की आपस में तुलना कर रहे हैं और उन्हें एक श्रेणी में रख रहे हैं कि यह पहली श्रेणी में है, यह दूसरी में और यह तीसरी, चौथी श्रेणी में है। तार्किक तरीके से देखें तो बच्चा अपनी कक्षा में प्रथम आया है, इससे यह नहीं पता चलता कि उसे कितना आता है, इससे बस यही पता चलता है कि बाकी बच्चों को उससे कम आता है। आजकल, कई विश्वविद्यालयों में भी ग्रेडिंग इसी तुलनात्मक तरीके से होती है। जैसे, पहले 15 फीसदी को, चाहे उनको कितना भी आता है, ग्रेड ए दे दीजिए, दूसरे 15 फीसदी को इसी तरह ग्रेड बी दे दीजिए, तीसरे को सी ग्रेड। हालांकि इसमें पास होने के लिए कुछ न्यूनतम जरूर अपेक्षित होता है। यह भी पद्धति है, यानी ए ग्रेड वाला समूह सबसे अधिक जानने वाले समूह का परिचय देता है, लेकिन वह वास्तव में कितना जानता है, इसके बारे में कुछ खास पता नहीं चलता।

दूसरी तरह के आकलन को मानदंड आधारित मूल्यांकन (क्राइटेरिया रेफरेंस असेसमेंट या इवैल्यूएशन) कहते हैं। इसका मतलब यह है कि कोई पाठ्यचर्या है, जिसमें अपेक्षा की गई है कि बच्चे को इतनी गणित, इतनी भाषा, इतना विज्ञान आ जाना चाहिए। यह मानदंड हो गया और परीक्षा इसे संदर्भ (रेफरेंस) बनाकर आकलन करती है। हमारे यहां परीक्षा प्रणाली में जो 33 फीसदी अंक पर पास मानते हैं, वह इसी पद्धति का उदाहरण है। यानी, जो पाठ्यचर्या थी, उसके हिसाब से बच्चे को 33 फीसदी आता है, अतः वह पास है।

तीसरा नजरिया न तो तुलना का है, न मानदंड संदर्भ का है। इसमें बच्चे के सीखने का सामान्य आकलन (सिंपल असेसमेंट ऑफ लर्निंग) करते हैं। मेरे विचार से इसमें थोड़ी-सी समस्या है। मुझे यह अवधारणात्मक रूप से मुश्किल लगता है। पहली बात तो यह कि अगर आपको इसकी चिंता नहीं है कि बच्चे ने पाठ्यचर्या की तुलना में कितना सीखा है तो फिर आप आकलन कर ही क्यों रहे हैं? इसका मतलब है कि आपके मन में कुछ न कुछ तो है। जैसे, बच्चे को इतनी उम्र में कितना सीख लेना चाहिए या फिर पाठ्यचर्या के अनुसार इतना सीख लेना चाहिए। मतलब, ऐसे लोग आकलन पद्धति को थोड़ा नरम करना चाहते हैं कि सिर्फ यह देखना कि बच्चे को कितना आता है। हम कहते तो हैं कि केवल आकलन कर रहे हैं, ''मूल्यांकन'' नहीं, लेकिन इसकी जरूरत क्या है? अगर बच्चे को कम आएगा, तो आप चिंतित होंगे। यदि अधिक आएगा, तो आप खुश होंगे। आप कम या ज्यादा तय किस आधार पर करेंगे? यदि आप दूसरे बच्चों या पाठ्यचर्या से तुलना भी नहीं कर रहे, तो फिर वह कसौटी क्या होगी? इसीलिए, वैचारिक तौर पर मुझे यह मुमकिन नहीं लगता, मुझे यह आकलन को थोड़ा नरम बनाने की शब्दावली भर लगती है।

इसी परिप्रेक्ष्य में सतत एवं समग्र आकलन को देखा जाना चाहिए। मुझे लगता है कि सतत व समग्र आकलन 'क्या सीखा जाना चाहिए' पर ध्यान देता है, न कि किसने किससे ज्यादा सीखा। सतत एवं समग्र आकलन में अमूमन यह देखा जाता है कि पाठ्यचर्या के बरक्स बच्चा कहां पहुंचा है तथा अभी और कितना काम करना है। आप जब भी शिक्षणशास्त्रीय या सीखने की बेहतर व्यवस्था के संदर्भ में या अभिभावकों से संवाद करने या प्रमाण पत्र देने के लिए आकलन करते हैं तब देखने की कोशिश की जाती है कि पाठ्यचर्या के बरक्स बच्चे ने कितना सीखा है। मोटे तौर पर हम कहें तो सतत एवं समग्र आकलन मानदंड संदर्भ के ही दायरे में आता है।

सतत एवं समग्र आकलन के संदर्भ में दो महत्त्वपूर्ण सवाल उठते हैं। पहला अवधि का है और दूसरा समग्रता का है। अवधि इंगित करती है कि आकलन कितने दिनों में करना है? हमने शुरू में बात की थी कि योगात्मक आकलन में हम तय कर लेते हैं कि साल में एक या दो या तीन बार आकलन करेंगे। यानी, जुलाई में पढ़ाई शुरू करने के बाद आपने तय कर लिया कि दिसम्बर में योगात्मक आकलन करेंगे। जब हम सतत आकलन की बात करते हैं, खासकर भारत के संदर्भ में, तो लोग कल्पना नहीं कर पाते कि आखिर वे बात किसकी कर रहे हैं? वे अक्सर अवधि को घटाकर या कम करके समझ लेते हैं कि वे सतत आकलन कर रहे हैं। जैसे, जुलाई में सत्र शुरू हो और दिसम्बर में परीक्षा ली, तो वह योगात्मक आकलन हो गया और इसकी जगह यदि पांच बार परीक्षा ले ली तो वह सतत आकलन हो गया। यह सतत आकलन की गलत व्याख्या है। इसके कई कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि योगात्मक आकलन सारे बच्चों का एक पर्चे पर एक साथ होता है। यदि हर महीने जो परीक्षा ले रहे हैं, वह भी तो वैसा ही कर रहे हैं। कुछ को लगता है कि महीना अधिक हो गया, तो हरेक सोमवार को कर लो। यहां भी आकलन परीक्षा के तौर पर ही हो रहा है।

असल में, अवधारणात्मक स्तर पर जब हम सतत आकलन की बात करते हैं, तो यह माना जाता है कि उसमे कोई अवधि नहीं होगी। दूसरे, ऐसी कोई बाध्यता नहीं होगी कि सारे बच्चों का आकलन एक साथ ही हो। कुछ बच्चों का आज हो सकता है, कुछ का कल हो सकता है, कुछ का परसों हो सकता है और इसमें निश्चित अवधि नहीं है, इसलिए जिनका आकलन आज हुआ है, उनका फिर से परसों भी हो सकता है। यानी, इसमें से अवधि गायब हो जाती है। यदि अवधि गायब हो जाती है तो फिर आकलन आयोजित कैसे होगा? उस पर अभी बात करेंगे। पहले वैचारिक तौर पर इसे समझ लें।

दूसरी बात यह है कि जिस परचे या प्रश्न पत्र के आधार पर किसी एक बच्चे का आकलन किया गया है, किसी दूसरे का उससे भिन्न परचे या प्रश्न पत्र पर हो सकता है और तीसरे बच्चे का किसी और पर हो सकता है। इसका मतलब हुआ कि दो चीजें, एक ही परचा और एक ही समय गायब हो गए। हालांकि, सतत का मतलब यह भी नहीं है कि कोई पल ऐसा न गुजरे जब आकलन न हो रहा हो। यह परिभाषा शिक्षक और विद्यार्थी, दोनों के लिए, कुछ ज्यादा खिंची हुई हो जाएगी। इसलिए, बेहतर होगा कि हम कहें कि कोई निश्चित समयावधि के बिना यह देखा जाएगा कि कोई खास विद्यार्थी क्या सीख रहा था? तो, यह कक्षा के बजाय व्यक्ति (इंडिविजुअल) पर केन्द्रित हो जाता है। उसका समय, बारंबारता (फ्रीक्वेंसी) और किस मुद्दे पर आकलन हो रहा है, यह व्यक्ति केन्द्रित हो जाता है। इस तरह, बच्चे के शैक्षिक विकास की एक सतत जानकारी शिक्षक को मिलती रहती है।

अब, समग्रता पर बात करें। एक शब्द आजकल चला है, शैक्षणिक (स्कॉलास्टिक), और इसका मतलब है, जितना कुछ भी शैक्षिक पाठ्यचर्या में लिखा हुआ है। जैसे, हिंदी, अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि-इत्यादि। वह सब कुछ जिनसे विद्वान (स्कॉलर) बनता है, उसे शैक्षणिक कहते हैं। वहीं कुछ चीजों को लोग गैर-शैक्षणिक (नॉन-स्कॉलास्टिक) कहते हैं, तो कुछ एफेक्टिव कहना पसंद करते हैं। इसी तरह के कुछ शब्द और हैं करिक्युलर और एक्स्ट्रा-क्यूरिक्युलर। जब यह पूछा जाता है कि यह एक्स्ट्रा-करिक्युलर का क्या मतलब है, तो उसे को-क्युरिक्युलर कहा जाने लगा। यानी, यह शब्दों को लेकर कुछ झगड़ा है। इसका मतलब यह हुआ कि ठीक है, आपने गणित तो सीख लिया, लेकिन दूसरे बच्चों के साथ व्यवहार कैसे करते हैं? खेलते हुए बेईमानी कितनी करते हैं? अपने व्यवहार पर सोचना, भावनाओं को समझना, आत्मविश्वास का होना, मुश्किलों को सहन करना; आदि भी इसी पक्ष के हिस्से हैं। इनको आप नैतिक और सामाजिक मूल्य, तथा आत्म-परिष्कार संबंधी चीजें कह सकते हैं। एक जमाने में इनको नॉन-कॉग्निटिव (अ-संज्ञानात्मक) कहते थे। नॉन-कॉग्निटिव से आशय है कि इसमें आपके दिमाग की कोई खास भूमिका नहीं है। यह भावनात्मक है और उसके आधार पर आप दूसरों के साथ अपना व्यवहार तय करते हैं। इसमें संज्ञानात्मक तर्क (कॉग्निटिव लॉजिक) का मसला नहीं है, बहुत लोगों का ऐसा मानना था।

फिर, लोगों ने कहा कि यह बात तो सही नहीं दिखती, क्योंकि क्या करना है, क्या नहीं करना है, यह तो कई अन्य बातों पर आधारित होता है। यह तो बहुत अधिक संज्ञानात्मक है, जैसे परीक्षा में मुझे नकल करनी है या नहीं, इस पर मैं कई तरह से सोच सकता हूं। तो, कॉग्निजेंस (संज्ञान) से तो आप भाग ही नहीं सकते, वह तो हमेशा रहेगा। जैसे, आजकल लोगों में दिल्ली या बाकी जगहों पर हो रही गैंग-रेप की घटनाओं पर काफी गुस्सा है। क्या यह केवल भावनात्मक है? या, इसके पीछे यह सोच है कि सरकार या पुलिस अपना काम नहीं कर रही? उसकी वजह से मैं असुरक्षित रह गया या यह विचार कि दूसरे के साथ जबर्दस्ती करना तो मूल्य के स्तर पर ही बहुत खराब चीज है। मतलब, आप इस तर्क के साथ दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान कर रहे हैं, उसकी बात कर रहे हैं, तो यह सब तो कॉग्निटिव मामला है। फिर, लोगों ने कहा कि भावनाएं या मूल्य या व्यवहार अ-संज्ञानात्मक (नॉन-कॉग्निटिव) हैं, यह मामला बहुत दूर तक नहीं जाता है। एक तर्क यह है कि 'हां, संज्ञानात्मक है तो सही, पर यह केवल संज्ञानात्मक ही नहीं है, बल्कि इसमें भावनात्मक पक्ष भी है। हो सकता है कि गणित, विज्ञान आदि सीखने में 90 फीसदी संज्ञानात्मक ऊर्जा काम आए, 10 फीसदी ही भावनात्मक पक्ष हो। मूल्य, व्यवहार आदि में हो सकता है कि 50 फीसदी संज्ञानात्मक और 50 फीसदी भावनात्मक हो। मुझे व्यक्तिगत तौर पर 50 फीसदी से कम जाने में खतरा लगता है। आप चाहें, तो 90 फीसदी भावनात्मक और 10 फीसदी संज्ञानात्मक रख लें, लेकिन फिर इंसान और जानवर के बीच का फर्क कम हो जाएगा।

जब भावनात्मक की बात की जाती है तो उसका आशय यह नहीं है कि उसमें संज्ञानात्मक पक्ष नहीं है। इसका आशय बस इतना है कि जब हम इसकी बात करते हैं, तो वह पूरी तरह तार्किक और संज्ञानात्मक नहीं होता, उसमें कुछ तर्क की सीमाओं से पार जाकर सीधा मन को छूने वाला पहलू भी होता है। संवेगात्मक (अफेक्टिव) में अमूमन लोग मूल्य, भावनात्मक प्रतिक्रिया और व्यवहार को रखते हैं। जब हम समग्र की बात करते हैं, तो कहा जाता है कि आप उसमें केवल शैक्षणिक (स्कॉलास्टिक) संदर्भ को न देखें, बल्कि भावनात्मक पक्ष को भी देखें। उदाहरण के लिए, गणित पढ़ना। हो सकता है कि मुझे गणित बहुत अच्छी आती हो, पर पसंद नहीं हो। तो, यहां आप गणित के बारे में शिक्षार्थी का भावनात्मक आकलन कर रहे हैं कि यह गणित में है तो बहुत अच्छा या अच्छी, पर इसे गणित पसंद नहीं है। यह मेरे सीखने में भी महत्त्वपूर्ण है। आखिर, मैं आगे अपनी जिंदगी में कितनी गणित समझूंगा या सीखूंगा, यह उसमें मेरी रुचि पर भी निर्भर करता है।

शैक्षणिक (स्कॉलास्टिक) के बारे में भी हमारी अभिवृत्ति क्या है, मैं उससे प्यार करता हूं, उसे नापसंद करता हूं या उससे डरता हूं, यह भी देखना चाहिए। अगली बात, भावनात्मक प्रतिक्रिया की करते हैं। जैसे, जब कोई नहीं सीख पाता है, तो क्या करता है? उदास हो जाता है, दुखी होता है, नखरे दिखाता है, पेन्सिल फेंक देता है या लगातार कोशिश करता है। ये भी एक संवेगात्मक मामला है।

तीसरी बात, व्यवहार की है। यानी, मैं दूसरों से कैसा व्यवहार करता हूं? मैं अपनी पढ़ाई में इतना डूबा हूं, दत्तचित्त हूं कि उस वक्त किसी ने मुझे पड़ोसी की मदद करने को कहा, तो मैं मना कर दूंगा या करूंगा? मैं दूसरों की थोड़ी-बहुत परवाह करता हूं या नहीं? मैं दूसरों से प्रतियोगिता कर रहा हूं या दूसरों के बारे में सोचता हूं? अगर आप राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में शिक्षा के उद्देश्यों को देखें तो उसमें दूसरों के लिए चिन्ता (कंसर्न) शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है। उसी तरह लोकतांत्रिक मूल्य भी उसमें शिक्षा के उद्देश्य के तौर पर अंकित है। इसमें समानता, न्याय, मानवाधिकार आदि शामिल हैं।

अब यहां एक समस्या आती है, जो एक प्रकार से सभी तरह के आकलन की समस्या है। इस पर ध्यान देना बहुत जरूरी है, जिसको हम अक्सर नजरअंदाज कर देते हैं। दर्शन वाले इसकी तरफ ध्यान भी दिलाते हैं, लेकिन सब उनकी अनदेखी कर देते हैं। सवाल यह है कि आप आखिर आकलन में करते क्या हैं? आप व्यक्ति के व्यवहार को ही तो देखते हैं। आप कागज पर एक प्रश्न देते हैं, फिर उसकी प्रतिक्रिया में बच्चा कैसा उत्तर देता है, उसकी जांच कर उसके ज्ञान को आंकने का दावा करते हैं। पर यह प्रतिक्रिया तो व्यवहार है। आप उसे खेलते हुए देखते हैं कि वह बच्चों

के कितने कंचे चुराता है। यह भी व्यवहार है। हालांकि, आप फैसला उसके दिमाग के अन्दर क्या है, इस पर देते हैं। क्या आपके पास कोई एक्स-रे मशीन है, जो उसके दिमाग के अंदर झांककर पता लगा लेती है? तो, मामला कुल जमा यह होता है कि आप उसके व्यवहार के आधार पर उसके दिमाग की एक काल्पनिक तस्वीर बनाते हैं, भले ही आप उसे तार्किक तस्वीर कह लें। आप ऐसे में बच्चे के व्यवहार को व्याख्यायित कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, जब आप गुणा के सवाल पर बच्चे की प्रतिक्रिया देखते हैं तो आप अनुमान लगाते हैं कि बच्चे को गुणा के नियम आते हैं। लेकिन गुणा करने के सैकड़ों तरीके हो सकते हैं। यह भी हो सकता है कि शिक्षक ने गुणा की जो प्रक्रिया बताई उसे आंख मूंदकर याद कर लिया। वहीं, आप उसे रोककर पूछें कि, तुमने ऐसे गुणा क्यों किया, तो वह शायद ही बता पाए। लेकिन आप तो उसे यही कहेंगे कि हां, इसे गुणा का सिद्धांत आता है, उसकी विधि आती है। मतलब, उसे गुणा की प्रक्रिया तो आती है, पर गुणा के पीछे की समझ है या नहीं, उसकी आप केवल कल्पना कर रहे हैं। यही हम सभी विषयों और बातों के साथ कर रहे हैं।

"अगर आप बेहतर सिखाने के लिए पढ़ा रहे हैं और जागरूक शिक्षक हैं, तो जाहिर है आप जानना चाहेंगे कि इस तरह पढ़ाने से बच्चे सीखते हैं या नहीं सीखते हैं। इसका अर्थ है कि आकलन होना चाहिए। मैं जो तर्क कर रहा हूं, वह यह है कि बेहतर शिक्षणशास्त्र का एक लाजमी हिस्सा आकलन होता है। कैसे पढ़ाएं और क्या गतिविधि करें इसकी कुछ मान्यताएं हमारे पास हैं लेकिन कितनी सफलता मिल रही है, यदि शिक्षक अच्छा शिक्षाशास्त्री है तो लगातार उसके मन में यह रहना होगा।"

वास्तव में प्रतिक्रिया देखकर हम दिमाग की जो काल्पनिक तस्वीर बनाते हैं, उसमें तार्किक और अवधारणात्मक खाई है। यहां फिर व्यक्तिनिष्ठता की बात आ जाती है। ऐसा हो सकता है कि एक शिक्षक की व्याख्या दूसरे से भिन्न हो। शिक्षक के व्यक्तिगत आग्रह बड़ी भूमिका तय करने लगते हैं। जैसे, कोई शिक्षक इस बात से बहुत खुश हो सकता है कि बच्चे या बच्ची ने सही गुणा कर दिया, कोई दूसरा इसी बात पर सोच सकता है कि गुणा तो कर दिया, लेकिन क्या इसे अवधारणात्मक समझ भी है या इसने केवल रट लिया है? ऐसे सवाल बहुत व्यापक हो जाते हैं, जैसे कोई शिक्षार्थी दूसरों की बहुत मदद करता है, तो मैं सोच सकता हूं कि यह केवल अनुकूलन (कंडीशनिंग) का मामला है, या उसकी सचमुच ही नैतिक प्रतिबद्धता है।

इससे हमें यह सीख मिलती है कि आकलन के समय हमें विनम्र रहना चाहिए। हम अंदाजा लगा रहे हैं और पक्के तौर पर कुछ भी कहने के दार्शनिक आधार हमारे पास नहीं हैं। इसलिए, हमें कह देना चाहिए कि यह हमारा मोटा अंदाजा है, पक्के तौर पर हम दावा नहीं कर सकते।

एक दूसरी समस्या है कि हम मूल्य वाले हिस्से में कुछ नहीं कह सकते कि आखिर मूल्य क्या हों और उनका व्यवहार में प्रस्फुटन कैसा हो? उदाहरण के लिए, मान लें हम न्याय और समानता सिखाना चाहते हैं। लेकिन हम वास्तव में यह नहीं जानते कि न्याय और समानता को इंगित करने वाले संकेतक क्या हैं। इससे भी बढ़कर अगर मैं यह पूछूं कि न्याय से हम क्या समझते हैं, तो हरेक के मन में उसकी अलग-अलग धारणा हो सकती है। जबकि यदि हम गुरुत्वाकर्षण के बारे में बात करें, तो हो सकता है कि उसकी भी कई व्याख्याएं हों, लेकिन हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान वैज्ञानिक सोच के मुताबिक आप ठीक हैं या आप ठीक नहीं हैं। इसके बारे में हम एक तर्कसंगत समझौते पर आ सकते हैं। लेकिन यदि न्याय की बात करें तो मैं किसी बच्चे के बारे में कह सकता हूं कि उसकी न्याय के बारे में समझ विकसित हो गई है, लेकिन कोई दूसरा कह सकता है कि उसकी कोई समझ नहीं बनी है। हम दोनों ही अपने रुख को लेकर ठीक हो सकते हैं और उसके बचाव के लिए हमारे पास तर्क भी हो सकते हैं।

समग्र आकलन करने को लेकर देश में हल्ला तो बहुत हो रहा है कि हम समग्र आकलन करें और उसके बिना कुछ नहीं हो सकता। लेकिन उसमें एक बहुत बड़ा खतरा है, जिसे हम नहीं देख रहे हैं कि यह शिक्षक की व्यक्तिगत व्याख्या पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, हरियाणा में खाप पंचायतों के अध्यक्ष और सचिव जिनमें से अनेक स्कूल और यूनिवर्सिटी के शिक्षक भी होंगे। ऐसे शिक्षक समानता के बारे में आकलन भी करेंगे। यह फतवा देगा कि कौन बराबरी के मूल्य में बहुत आगे है और कौन बहुत पीछे है, इसके बारे में हमें पता नहीं है। यहां उनके व्यक्तिगत

पूर्वाग्रह काफी अहम् हो जाएंगे। ऐसे व्यक्तिगत दुराग्रहों वाले उदाहरण आपको हर क्षेत्र और हर राज्य में बहुत सारे मिल जाएंगे। कहीं जाति का, तो कहीं धर्म का और कहीं भाषा या क्षेत्रीयता का। यदि अलग-अलग सतत का यह अर्थ है कि उसमें कोई अवधि नहीं है, वह हर बच्चे का हो सकता है और कभी भी हो सकता है तथा समग्र का यह अर्थ है कि बच्चे के विकास के सारे आयाम देखे जाएं, तो सवाल उठता है कि हम इसे करें कैसे? अभी तक हमने केवल परिभाषाओं पर बात की, परिभाषाओं की बात करना जरूरी था। क्योंकि उसके बिना हमें पता नहीं चलेगा कि करना क्या चाहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि मुझे जंगल से हिरण पकड़ना है और यदि मुझे हिरण के बारे में जानकारी ही नहीं है, और यदि मैं चूहे को हिरण समझता हूं, तो शाम तक मैं आपको कई सारे हिरण पकड़कर दे दूंगा, लेकिन आपको बड़ी निराशा होगी।

अतः अभी तक मैंने अवधारणात्मक बात की है। पर असली मसला तो यह है कि इसे करें कैसे? मेरा मानना है कि सतत और समग्र आकलन केवल एक तरीके से हो सकता है और वह है कि आप इसे अलग से आकलन के तौर पर देखना बंद कर दें। यह बात विरोधाभासी लग सकती है। इसे ठीक से समझने के लिए हमें शिक्षा में काम आने वाली एक और अवधारणा पर विचार करना चाहिए। यह अवधारणा शिक्षाशास्त्र है।

पहली बात, हमें यह मानकर चलनी चाहिए कि कोई भी शिक्षक कक्षा में तब तक नहीं जा सकता, जब तक उसके मन में कोई अपना शिक्षणशास्त्र न हो। भले ही शिक्षक ने स्पष्ट तरीके से सोचा हो या नहीं सोचा हो, लेकिन उसके मन में कोई न कोई मान्यताएं होती हैं कि उसे कक्षा में क्या और कैसे पढ़ाना है और बच्चे कैसे सीखते हैं। शिक्षणशास्त्र का मुख्य सवाल है कि कैसे पढ़ाएं? शिक्षक क्या पढ़ा रहा है? वही, जो पाठ्यचर्या में दिया हुआ है। शिक्षक को बच्चों के पढ़ाने के लिए बेहतर तरीके खोजने हैं जो सभी बच्चों के लिए उपयुक्त हों। हम खोज रहे हैं कि कैसे पढ़ाएं? मान लीजिए, किसी ने कह दिया प्रश्न-विधि से पढ़ाएं। आजकल बी.एड. में यह खूब प्रचलित है। या फिर आरटीई में लिखा है बाल-केन्द्रित शिक्षण विधि से पढ़ाएं। मैं इन्हें यहां उदाहरण के तौर पर रख रहा हूं।

आप जिस भी विधि से पढ़ा रहे हैं, उसे सचमुच बेहतर सिखाने के लिए पढ़ा रहे हैं या किसी के कहने मात्र से? अगर आप बेहतर सिखाने के लिए पढ़ा रहे हैं और जागरूक शिक्षक हैं, तो जाहिर है आप जानना चाहेंगे कि इस तरह पढ़ाने से बच्चे सीखते हैं या नहीं सीखते हैं। इसका अर्थ है कि आकलन होना चाहिए। मैं जो तर्क कर रहा हूं, वह यह है कि बेहतर शिक्षणशास्त्र का एक लाजमी हिस्सा आकलन होता है। कैसे पढ़ाएं और क्या गतिविधि करें इसकी कुछ मान्यताएं हमारे पास हैं लेकिन कितनी सफलता मिल रही है, यदि शिक्षक अच्छा शिक्षाशास्त्री है तो लगातार उसके मन में यह रहना होगा। यदि उसे नहीं पता चल रहा है कि वह जो पढ़ा रहा है उसका नतीजा क्या निकल रहा है तो वह अच्छी शिक्षण विधि नहीं जानता है, और न ही शिक्षाशास्त्रीय नजर से अच्छा शिक्षक है। आप जैसे ही इस सवाल का जवाब ढूंढ़ेंगे आप आकलन कर रहे होंगे। अब आप सतत व समग्र मूल्यांकन को शिक्षणशास्त्र के हिस्से के तौर पर देखें। अभी जो कुछ मैं कर रहा हूं, वह भी शिक्षणशास्त्रीय प्रयास ही तो है। जैसे, मैं लगातार आपकी आंखें, आपका चेहरा, आपकी प्रतिक्रिया देखकर आकलन ही तो करता हूं कि आप मेरी बात सुन रहे हैं या नहीं। यदि मुझे लगता है कि बहुतेरे लोग ध्यान नहीं दे रहे हैं, तो मैं अपने तरीके में कुछ फेर-बदल करता हूं। मैं प्रतिक्रियाएं देखकर तुरंत अपनी बात करने के तरीके को बदल रहा हूं। यही तो शिक्षणशास्त्र है।

इस तरह हमारी इस बातचीत में सतत आकलन संप्रेषण का हिस्सा है; इसी तरह से कक्षा में पढ़ाने में सतत आकलन शिक्षण की प्रक्रिया का हिस्सा है।

हालांकि, क्या शिक्षण की प्रक्रिया में जिस तरह का आकलन सहज रूप से होता है उससे सारे शैक्षणिक और प्रबंधकीय उद्देश्य पूरे हो पाएंगे? शायद नहीं। हमें कुछ थोड़ा-बहुत शिक्षण की सहज प्रक्रिया से अधिक करना पड़ सकता है। पर पहले यह देखें कि सुव्यवस्थित शिक्षण करने के लिए क्या-क्या तैयारी चाहिए। हो सकता है उस तैयारी का कोई लेखा-जोखा रख सकें तो वही आकलन के बहुत काम की हो सके।

इसका एक तरीका यह हो सकता है कि शिक्षक हरेक कक्षा के बाद 100 शब्दों की एक टिप्पणी लिख ले। उस टिप्पणी में सब कुछ लिखने की जरूरत नहीं है। सिर्फ कुछ मोटी-मोटी बातें हो सकती हैं। जैसे कि आज का पूरा शिक्षण कैसा रहा, किन बच्चों ने दिए गए काम में पूरी रुचि ली एवं काम पूरा किया और कौन बच्चे थे जिन्होंने रुचि नहीं ली। इस तरह छः-सात दिन लिखेंगे तो एक पैटर्न उभरने लगेगा। आपको लग रहा होगा कि इससे शिक्षक का काम बढ़ेगा, लेकिन यही करना तो शिक्षक का काम है। यह अगले दिन की योजना बनाने के लिए भी जरूरी है।

"मैं यहां यह कहने की कोशिश कर रहा हूं कि आप राज्य स्तर पर इसके प्रपत्र प्रचारित करने के बजाय, इसका दर्शन, इसकी अवधारणा क्या है, इसे व्यवहार में लाने की प्रक्रिया, इसका प्रशिक्षण कैसे हो, शिक्षक में किस तरह की क्षमताएं चाहिएं; इन पर सामग्री बनाइए और वास्तविक लेखा-जोखा रखने वाले प्रपत्रों को जमीनी स्तर पर विकसित होने दीजिए। यदि ऐसे प्रपत्र ऊपर से विकसित करके भेजे जाएंगे, तो उनमें न तो शिक्षकों को विश्वास होगा कि वे काम के हैं, और उसमें वे जो भरेंगे वह ऐसा होगा जिसे आप चाहते हैं, न कि वह जो उनके विद्यालय में हो रहा है।"

इस तरह की संक्षिप्त टिप्पणी लिखना एक कारगर शुरुआत हो सकती है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यही पर्याप्त है, लेकिन यह एक औजार जरूर है। आपने इस तरीके से इतनी सामग्री उत्पादित कर ली होती है कि वह आपके काम आ सके। जैसे, बच्चों ने अपनी कॉपी में कुछ गणित का काम किया होगा, आपने बाहर कुछ देखकर आने और उसे लिखने को कहा होगा, किसी कहानी को पढ़कर कुछ सवाल दिए होंगे; तो इस तरह की बहुत-सी सामग्री आपके पास होगी। मेरे कहने की कोशिश है कि बच्चे का कक्षा-कार्य आपके पास उपलब्ध है और इस पर अगर आप आधा घंटा लगाएं, तो आपके पास एक अन्तर्दृष्टि होगी कि आपकी अपेक्षा के अनुरूप कितने बच्चे उस स्तर, प्रभाविता और गहराई के साथ काम कर रहे हैं या नहीं कर पा रहे हैं? इससे आपको पता चल जाता है कि किस बच्चे के साथ आपको कितनी मेहनत करनी है। आगे किस तरह से और क्या पढ़ाना है। इससे एक सचेत शिक्षण प्रक्रिया बनाई जाएगी। जिसमें शिक्षक क्या पढ़ा रहा है, किस तरीके से पढ़ा रहा है, किन बच्चों पर उस पढ़ाने का क्या असर हो रहा है और उसे बेहतर करने के लिए क्या किया जा सकता है, आदि चीजों पर शिक्षक का सतत ध्यान बना रहेगा।

अभी हमने केवल दो बातें कही हैं। एक, रोज एक छोटी टिप्पणी लिखना और दूसरी, उस टिप्पणी के आधार पर सोच-समझकर आगे की योजना बनाना और उसका लेखा-जोखा रखना। यह सतत व समग्र आकलन का तरीका हो सकता है। वैसे, ध्यान रखिएगा कि इसके लिए आपने अलग से कुछ आकलन नहीं किया। बस आप थोड़े से जागरूक हैं, स्व-चिन्तनशील हैं और बच्चों ने जो काम किया है उसे देख रहे हैं।

इसके बाद, तीसरी बात यह हो सकती है कि आप पिछली चीजों को पलटकर देख लें। इसके लिए गणित का उदाहरण ले सकते हैं। मान लीजिए, आप गुणा या भाग सिखा रहे हैं और आपके मन में गुणा या भाग का अवधारणात्मक ढांचा स्पष्ट है, तो आपको यह अंदाजा हो जाएगा कि जो बच्चा भाग नहीं सीख रहा है वह अवधारणा को नहीं समझ रहा है या सिर्फ असावधानी या चूक की वजह गलती कर रहा है। क्योंकि जो अवधारणात्मक चूक होती है, उसमें एक पैटर्न होता है, किसी तर्क से उसे समझा जा सकता है जबकि असावधानी वाली भूल में कोई पैटर्न नहीं होता। यदि कोई बच्चा गुणा करते हुए लगातार एक खास तरह की गलती करता है तो वह अवधारणा की गलत समझ की वजह से हो सकता है। इस तरह की गलतियां आप आसानी से समझ सकते हैं।

यहां पर आप एक उपाय कर सकते हैं, मैं जो करता था उसका उदाहरण देता हूं। मैं बच्चों के लिए किसी एक दिन एक लंबी-चौड़ी वर्कशीट बनाता था, हालांकि उन्हें यह नहीं बताता था कि वह आकलन जैसा कुछ है। उसमें मैं गिनने से लेकर अभी तक गणित में हो चुके काम की तमाम अवधारणाओं पर अभ्यास बनाता था। एक व्यवस्थित क्रम में आगे बढ़ते हुए। फिर, उनको बुलाकर मैं कहता था कि भई, आज तुम भाग करना वगैरह छोड़ो। यह वर्कशीट देखो, इसे तो तुम कर लेते हो। मैं उसे पहला पन्ना ही दिखाता था, जिसे देखकर वह बच्चा खुशी से लेकर भाग जाता था। बच्चों को इस काम को करने में समय लगता था। इसे देखकर मुझे पूरी तरह समझ आ जाता था कि गिनने से लेकर

भाग देने तक में समस्या कहां है? यह वर्कशीट भी मैं हर दिन नहीं देता था। पहले दिन किन्हीं चार को दी, कुछ को अगले दिन, फिर उसके अगले दिन। और यह हर एक बच्चे के लिए उसके सीखने के स्तर की पहचान के लिए होती थी। इस तरह, ये वर्कशीट भी सतत आकलन का हिस्सा बन जाती थीं। पर यह उनके रोज के काम की तरह से होता था, किसी परीक्षा की तरह नहीं। इस तीसरे तरीके को जान-बूझकर किया गया आकलन कह सकते हैं। यह शिक्षण कार्य का हिस्सा तो है पर शिक्षक की मंशा बच्चे की समझ की जांच है। इसमें शिक्षक अपनी इच्छा के मुताबिक बच्चों का आकलन कर सकता है। यदि वह किसी बच्चे के काम को लगातार देख रहा है तो हो सकता है कि महीनों तक उसका आकलन करने की जरूरत न हो। जिन बच्चों के साथ कुछ समस्या हो, हो सकता है कि उनको जल्दी-जल्दी देखने की जरूरत हो। यह एक शिक्षक के तौर पर उसकी सोच पर निर्भर करता है। यदि आप ध्यान दें तो ये सारी चीजें शिक्षक को कुछ सूचनाएं दे रही हैं, जिनका रिकॉर्ड भी है। वह सप्ताह में या पन्द्रह दिन में या महीने में इन सभी दस्तावेजों को देखकर एक अवधि की रिपोर्ट बना सकता है। वह यह तीन महीने या छः महीने में भी कर सकता है। इस रिपोर्ट लिखने को आप सत्र के अंत आकलन (समेटिब) आकलन कह सकते हैं। और पढ़ाने के काम में शिक्षक की मदद तो यह करता ही है। ऊपर की बात को हम समेकित करना चाहें तो मोटे तौर पर यह हैः 1. जागरूक रह कर पढ़ाना अर्थात् कक्षा में अपनी और बच्चों की गतिविधियों के प्रति सचेत रहना। 2. रोज अपने शिक्षण कार्य पर एक छोटी टिप्पणी लिखना। 3. अगले दिन की योजना बनाना और उसमें आज लिखी टिप्पणी की मदद ली। 4. इन योजना और टिप्पणियों के आधार पर साप्ताहिक प्रगति देखना और 6 महीने में एक बार हर बच्चे के समग्र शैक्षिक विकास की रिपोर्ट उपलब्ध सामग्री, अपनी योजना और टिप्पणियों, बच्चों की नोटबुक्स और उनके अन्य काम के आधार पर लिखना।

इस तरह के आकलन के लिए शिक्षक को थोड़ा जागरूक होना पड़ेगा और अतिरिक्त मेहनत के लिए तैयार होना होगा। अमूमन जिस तरह शिक्षक बिना तैयारी के कक्षा में जाकर बच्चों से ही पूछते हैं कि कल हम क्या पढ़ रहे थे? ऐसी स्थिति में इस तरह का सतत आकलन नहीं हो सकता है और उनसे इसकी उम्मीद भी न रखें। इसके बिना वे अवधि को घटाकर परीक्षा के तरीके से ही आकलन कर सकते हैं लेकिन यह सतत आकलन नहीं होगा।

शिक्षक के लेखे-जोखे में कुछ टिप्पणियां बच्चों के व्यवहार के बारे में भी होंगी। व्यवहार के बारे में जानने का बेहतर तरीका है कि उनको खेलते देखिए, खाते देखिए, उनके साथ बैठकर खाना, खेलना, आदि। जो शिक्षक बच्चों से हिलेगा-मिलेगा नहीं, उससे सतत एवं समग्र आकलन की उम्मीद करना बेमानी है।

इस काम की शुरुआत विद्यालय से ही हो सकती है। मेरे विचार से सबसे बेहतर तरीका होगा शिक्षकों से ज्यादा से ज्यादा 100 शब्दों में एक टिप्पणी हर कक्षा के बारे में लिखने को कहना। उसने कक्षा में क्या महसूस किया और कक्षा में क्या हुआ, विशेष उपलब्धियों और कठिनाइयों के जिक्र करते हुए। शिक्षकों को टिप्पणियां (नोट्स) लिखना, अवलोकन करना और कौनसी चीज लिखने के काबिल है, यह लगभग पंद्रह दिनों में समझ में आ जाता है। लिखने की काबिलियत और गति दोनों बढ़ने लगते हैं।

इसके अलावा, बच्चों के कक्षा-कार्य पर रोजाना एक नजर डालना और कल क्या करेंगे, इस पर थोड़ा-सा सोचना। आप देखेंगे कि सामूहिक तौर पर शिक्षक चर्चा करने लगते हैं और यह होने लगता है, तो इस काम के विभिन्न कारगर रूप निकलने लगते हैं। धीरे-धीरे कुछ प्रपत्र विकसित होने लगते हैं जिनमें सभी जरूरी चीजें हों। शिक्षक मिलकर यह दो-तीन महीने में कर लेते हैं। लेकिन एक समस्या यह है कि ये प्रपत्र बदलते रहते हैं, हालांकि आप पाएंगे कि उनमें बहुत-सी बातें समान होती हैं।

मैं यहां यह कहने की कोशिश कर रहा हूं कि आप राज्य स्तर पर इसके प्रपत्र प्रचारित करने के बजाय, इसका दर्शन, इसकी अवधारणा क्या है, इसे व्यवहार में लाने की प्रक्रिया, इसका प्रशिक्षण कैसे हो, शिक्षक में किस तरह की क्षमताएं चाहिएं; इन पर सामग्री बनाइए और वास्तविक लेखा-जोखा रखने वाले प्रपत्रों को जमीनी स्तर पर विकसित होने

दीजिए। यदि ऐसे प्रपत्र ऊपर से विकसित करके भेजे जाएंगे, तो उनमें न तो शिक्षकों को विश्वास होगा कि वे काम के हैं, और उसमें वे जो भरेंगे वह ऐसा होगा जिसे आप चाहते हैं, न कि वह जो उनके विद्यालय में हो रहा है।

इसे करने का तरीका है कि इसके अवधारणात्मक ढांचे को समझें, उस पर बहस करें। शिक्षक को किस तरह की क्षमताओं की जरूरत है, जैसा कि मैंने कहा कि अवलोकन, बच्चों को जो पढ़ा रहे हैं उसकी अवधारणात्मक समझ, बच्चे सीखते कैसे हैं इसकी समझ, बच्चों के उत्तर देखकर इस बात का अंदाजा लगाना कि समस्या कहां है, इन सब चीजों पर कोई साहित्य विकसित किया जाए। इसके साथ ही शिक्षकों के साथ अन्तःक्रिया कैसे करेंगे इसके विधि-विधान विकसित करें। इसके बाद जो विकसित होना है उसे कक्षा में बनने दें।

मेरा मानना है कि कोई भी अकेला शिक्षक यह नहीं कर पाएगा। शिक्षकों के छोटे समूह बनाएं जो सतत एवं समग्र आकलन पर बातचीत करें, इसके उपयुक्त रूप विकसित करें। जैसे ही शिक्षकों का समूह 7-8 से बड़ा होगा समस्या होगी और जैसे ही शिक्षकों का समूह 4 से छोटा होगा, फिर से समस्या होगी। यदि शिक्षकों के ये समूह सप्ताह में बैठकर सतत एवं समग्र आकलन पर चर्चा करने लगें और उनके द्वारा भरे गए प्रपत्रों पर चर्चा करें तो यह संभावना है कि यह काम होने लगेगा।

अब थोड़ा आगे बढ़ें। मान लीजिए, उपरोक्त दस्तावेज और प्रक्रियाएं पूरी हैं तो इसे प्रमाण पत्र देने के काम में लिया जा सकता है। मुझे लगता है कि प्रमाण पत्र देने के लिए यह बहुत ही जबरदस्त सामग्री आपके पास है। हालांकि, इसे अकेला काम में नहीं ले सकते। आखिर में जब आप आठवीं का प्रमाण पत्र देना चाहते हैं तो एक छोटी-सी परीक्षा योगात्मक आकलन के लिए ले सकते हैं और उनमें उन चीजों को डाल सकते हैं, जो रचनात्मक आकलन में छूट गई हैं। ऐसा हो सकता है कि आप रचनात्मक आकलन के लिए 75 फीसदी जगह रखें और 25 फीसदी के लिए परीक्षा कर लें। इसके आधार पर आप प्रमाण पत्र दे सकते हैं जिसमें आप विषयवार अपनी टिप्पणियों के आधार पर कि बच्चे को क्या-क्या आता है, एक छोटी रिपोर्ट बना सकते हैं। मुझे लगता है कि आजकल जिस तरह की मार्कशीट दी जाती है, यह उससे कहीं बेहतर हो सकती है। यदि बच्चे के माता-पिता या कोई दूसरा इस रिपोर्ट को पढ़ेगा तो वह बच्चे के सीखने के बारे में इससे काफी कुछ अंदाजा लगा सकता है।

क्या इस तरह का आकलन स्कूल के स्वास्थ्य के बारे में कुछ बता सकता है? हां, लेकिन किसी को मेहनत करनी होगी। किसी को बैठकर सारे आंकड़ों को छह महीने या साल भर बाद एक साथ देखना होगा, बात करनी होगी, शिक्षकों से बात करनी होगी, फिर रिपोर्ट बनानी होगी। यह दस-पन्द्रह पन्ने की रिपोर्ट हो सकती है और उस पर बैठकर शिक्षकों से बातचीत करके आगे बेहतरी की योजना बनाई जा सकती है।

क्या यह आकलन शिक्षा-तंत्र के स्वास्थ्य को समझने में मदद कर सकता है? मैं कहूंगा कि अपने-आपमें तो नहीं कर सकता। हर विद्यालय अलग होता है और यदि आप उनके आंकड़ों को जोड़कर औसत निकालना चाहें तो वे औसत अर्थहीन होंगे। जिला स्तर पर शिक्षा के समझने वाले अच्छे शोधकर्ता बहुत सटीक और उपयोगी गुणात्मक रिपोर्ट बना सकते हैं। पूरी व्यवस्था कैसी चल रही है यह अलग सवाल है। सतत एवं समग्र आकलन में इस सवाल का आंकड़ों में जवाब नहीं मिल पाएगा। ◆

(यह लेख शिक्षकों के साथ जमीनी स्तर पर काम आरंभ करने वाले अजीम प्रेमजी फाउन्डेशन के सदस्यों के साथ की गई कार्यशाला में हुई बातचीत के आधार पर तैयार किया गया है।)

लेखक परिचयः दिगन्तर के संस्थापक सदस्य हैं। आजकल अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बैंगलोर में शिक्षा दर्शन के प्रोफेसर हैं।